

शिष्य जीवन के लिए सफलता सूत्र

जीवन में सम्पूर्णता प्राप्त कर लेना ही मनुष्य की चेतना है, मनुष्य का ज्ञान है। हजारों-हजारों वर्षों से योगी, यति, संन्यासी इसी प्रयास में चेष्टागत रहे हैं, कि कैसे हम सम्पूर्ण बन सकें? कैसे हम प्रज्ञावान बन सकें? कैसे हम चेतनावान बन सकें? कैसे हम क्षमतावान बन सकें? कैसे सारे शास्त्रों को निचोड़ कर अपने हृदय में उड़ेल सकें? कैसे समुद्र मंथन के बाद जो अमृत निकला है, उसे अपने अन्दर उतार सकें? कैसे कुण्डलिनी जाग्रत कर सकें? कैसे इस अन्नमय कोश को प्राणमय कोश में परिवर्तित कर सकें?

यह क्रिया केवल गुरु ही समझा सकता है, यह क्रिया केवल गुरु और शिष्य के सम्बन्धों के द्वारा ही सम्भव हो सकती है, यह क्रिया बूढ़ और समुद्र के पारस्परिक मिलन से ही सम्भव है, यह क्रिया प्रकाश को अपने अन्दर में समाहित करने से ही सम्भव है, यह क्रिया मानसरोवर में डुबकी लगा कर उसमें अवगाहन करने से ही हो सकती है।

और ये सारी क्रियाएँ इस ग्रंथ में स्पष्ट की गई हैं, जिसमें ध्यान है, धारणा है, समाधि है, चेतना है, दिव्यता है, कुण्डलिनी जागरण है, उपनिषद् हैं, वेद हैं, पुराण हैं और समस्त शास्त्र हैं। यह कायाकल्प की विधि है, यह अन्नमय कोश से प्राणमय कोश में जाने की सम्भावना है, यह कुण्डलिनी के सातों चक्र जागरण करने की क्रिया है। यह मात्र ग्रंथ नहीं है, अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। ये कागाज पर लिखे अक्षर मात्र नहीं हैं, अपितु हृदय पटल पर लिखने वाली पंक्तियाँ हैं। ये मात्र कागाज के पन्ने नहीं हैं, अपितु धर्मशास्त्र है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्पूर्णता का पर्याय है।

जो सौभाग्यशाली हैं, जिनके भाल पर विधाता ने सोने के अक्षरों से सम्पूर्णता लिखी है, वे ही इस ग्रंथ को प्राप्त कर, इसका मनन कर, इसके अनुरूप चल कर पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं और अपने जीवन में श्रेष्ठता, दिव्यता, चैतन्यता, अद्वितीयता, अप्रतिमेयता हस्तगत कर अपनी कई-कई पीढ़ियों को धन्य कर सकते हैं तथा अपने आपमें योगियों से भी श्रेष्ठ, महर्षियों से भी महान व देवताओं से भी वन्दनीय बन सकते हैं।

जो साधक, शिष्य या पाठक इस ज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु वितरित करने के लिए इस ग्रंथ शृंखला की से प्रतियाँ खरीदना चाहें, उन्हें मूल्य में विशेष रियायत दी जायेगी।

— प्रकाशक

डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली

गुरु और शिष्य

विश्व के दो श्रेष्ठतम शब्द — गुरु और शिष्य — जिसके पारस्परिक सम्बन्ध, पूर्णता, दिव्यता और तेजस्विता प्राप्त करने का अद्वितीय ग्रंथ



© मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान

संकलन एवं सम्पादन
अरविन्द श्रीमाली

प्रकाशक

मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान

डॉ० श्रीमाली भार्गव, हाई कोर्ट कॉलोनी,

जोधपुर - ३४२ ००१ (राज.)

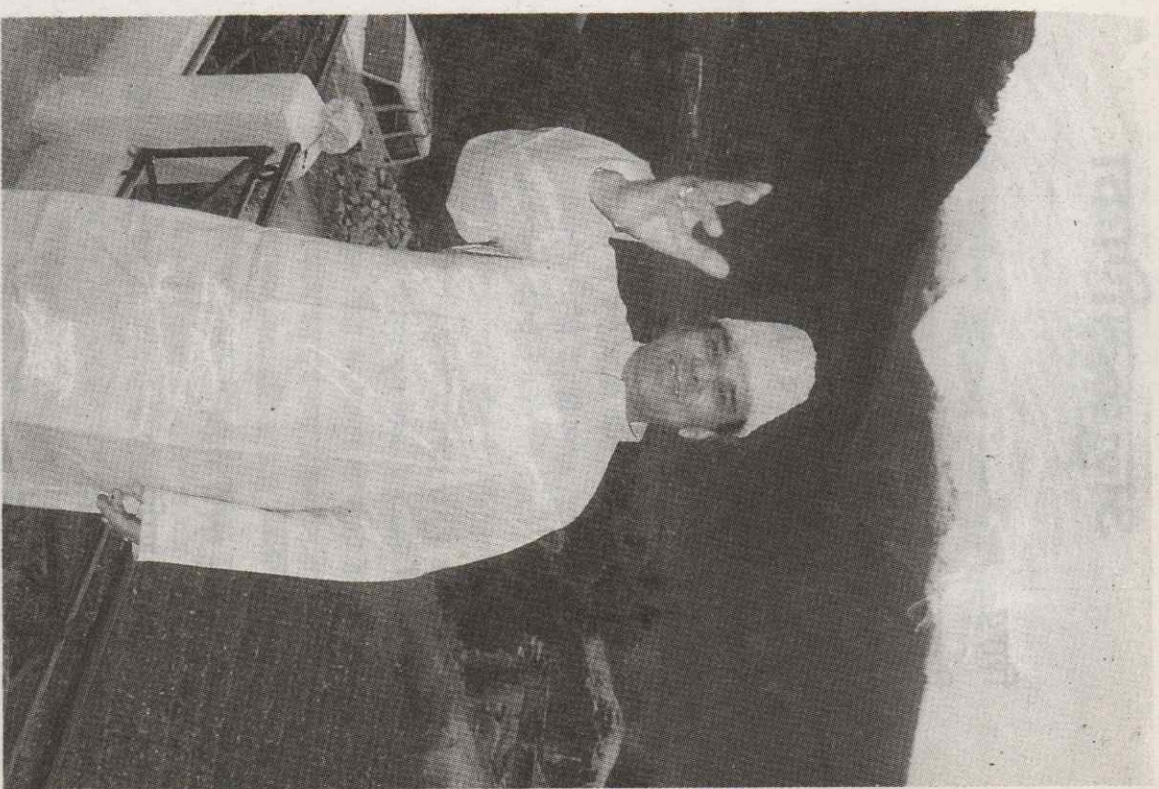
फोन : 0291-432209, फैक्स : 0291-432010

द्वितीय संस्करण	:	गुरु पूर्णिमा 2002
प्रति	:	5000
मूल्य	:	15/-
मुद्रक	:	आर. एस. आफसेट प्रिन्टर्स, 487/84, पीरगढ़ी दिल्ली - 28, फोन: 5262040

शब्द ब्रह्म है और वेदों से लेकर आज तक सभी योगियों, ऋषियों, महर्षियों और संतों ने उन्हीं शब्दों का प्रयोग अपने तरीके से किया है, जिन शब्दों का प्रयोग वेदों और उपनिषदों में किया गया है, उन्हीं शब्दों का प्रयोग मीरा, कबीर, तुलसी और रैदास ने भी किया है, क्योंकि शब्द तो शाश्वत हैं।

यदि किसी भी व्यक्ति या महापुरुष के शब्दों और भावों से पुस्तक में वर्णित शब्दों और भावों का साम्य दिखाई दे या अनुभव होने लगे, तो यह एक संयोग है। मैं उन सभी ज्ञात-अज्ञात महापुरुषों के शब्दों का, भावों का और उनके विचारों का ऋणी हूँ, क्योंकि उन सभी के साहित्य और भावों का मेरे चित पर गहरा असर रहा है।

यदि दुर्भाग्यवश इस पुस्तक के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का वाद-विवाद हो, तो ऐसी स्थिति में जोधपुर (राजस्थान) न्यायालय ही मान्य होगा। इस पुस्तक के किसी भी अंश को प्रकाशित व प्रचारित करने से पूर्व मंत्र तंत्र यंत्र विज्ञान द्वारा लिखित अनुमति लेना आवश्यक है।



पूज्य गुरुदेव
डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली

अनुक्रमणिका

शिष्य	5
शिष्य लक्षण	6
शिष्य धर्म	7
शिष्य चिन्तन	9
शिष्य की जागरुकता	10
गुरु मंत्र	11
गुरु कृपा	13
गुरुदेव	14
शिष्यत्व	15
आकांक्षा	17
समर्पण	18
समस्त देवता	19
सेवा धर्म: परम गहनः	21
सिद्धाश्रम प्राप्ति	22
गुरुदेव सामर्थ्य	23
साधक सामर्थ्यता	26
पूर्णता	29

शिष्य

शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा जितेन्द्रिय परिग्रहः।
सेवारतः सदामाज्ञा समर्पितः पूर्णतां इव।।

जीवन में सबसे कठिन कार्य शिष्य बनना होता है और जो सही अर्थों में शिष्य बन जाता है, उसे जीवन में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रहती, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है — इन्द्र का वैभव, ब्रह्मा का ज्ञान और विष्णु की पूर्णता।

परन्तु शिष्य कुलीन हो, अच्छे स्वभाव का हो, मन में दृष्टता या न्यूनता न हो और उसकी आत्मा हमेशा शुद्ध हो, हमेशा वह गुरु के प्रति उत्तम विचार रखने वाला और इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाला हो। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह और वासना युक्त न हो, उसकी आंख शुद्ध हो और कभी भी भूल कर भी गुरु के घर का तिनका भी चोरी करने की भावना न रखता हो।

सही अर्थों में शिष्य वही होता है, जो सेवारत रहता है, प्रतिक्षण उसकी इच्छा यही रहती है, कि मैं किस प्रकार से गुरु की सेवा करूं, गुरु के मुंह से शब्द निकले और मैं उसे पूरा करूं, वह चाहे कितना भी कठिन से कठिन कार्य हो, मुझे उस आज्ञा का पालन करना ही है और उस आज्ञा का पालन करे ही। साथ ही साथ वह पूर्ण रूप से समर्पित हो, अपने पास कुछ भी नहीं रखे — धन, यश, मान, पद, प्रतिष्ठा, यश, वैभव। सब कुछ न्यौछावर करने के बाद ही वह शिष्य कहला सकता है, पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

वास्तव में मात्र गुरु दीक्षा लेने और गुरु मंत्र जप करने से ही कोई शिष्य नहीं बन जाता, यह तो अनुयायी बनने की क्रिया हुई। शिष्यता के लिए आवश्यक है, कि हम तन, मन, धन से पूर्ण रूप से समर्पित होते हुए गुरु सेवा में लीन हों और गुरु को प्रसन्न कर उनकी कृपा प्राप्त कर सकें, क्योंकि उनकी कृपा द्वारा ही जीवन में पूर्णता की प्राप्ति सम्भव है।

श्रद्धा और समर्पण शिष्यता का मूल मापदण्ड है



शिष्य लक्षण

प्रथमं शिष्य त्यागं वै पश्याद् गुरु निद्रया।
प्रतिक्षणं गुरौ चिन्त्यं सेव्यं कार्यं हितं मतिं।।

गुरु के उठने से पहले ही शिष्य उठे और स्नान करके गुरु के घर को साफ, स्वच्छ, धो कर पवित्र बना दे, गुरु के वस्त्रों को तैयार कर दे और जब गुरु उठे, तब उनके कार्य में रत हो जाये। इसके साथ शिष्य कभी भूल कर भी गुरु से पहले नींद न ले, सारे कार्य सम्पन्न कर गुरु चरण रूपी तीर्थ में अवगाहन करे, गुरु के पैरों को दबाये और जब गुरु निद्रामग्न हो जाये, तब धीरे से उठ कर सो जाये। मगर शिष्य को नींद 'श्वान निद्रा' कही गई है, जिस प्रकार छोटा सा खटका होते ही श्वान की नींद खुल जाती है, ठीक इसी प्रकार थोड़ी सी आहट होते ही शिष्य की नींद खुल जानी चाहिए।

प्रतिक्षण जो गुरु का ही चिन्तन करता है, जो अपना सर्वस्व गुरु के चरणों में समर्पित करने पर प्रसन्नता अनुभव करता है, जो सेवक की तरह प्रतिक्षण उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहता है और गुरु कार्य में ही जो सर्वदा लीन रहता है, वही सही अर्थों में शिष्य है, वही गुरु की कृपा प्राप्त कर सकता है और वही सभी दृष्टियों से जीवन में पूर्णता, श्रेष्ठता, दिव्यता और तेजस्विता अनुभव कर सकता है।

वास्तव में गुरु सेवा एक अत्यन्त कठिन कार्य है, झूठ, छल, कपट आदि विकारों को परे हटा कर पूर्ण निर्मल चित्त के साथ गुरु के चरणों में समर्पित होना अत्यन्त कठिन है, कोटि-कोटि पुण्यों के ज्ञात होने पर ही जीवन में ऐसी स्थिति प्राप्त होती है... और जिसके जीवन में यह सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, वही गुरु का प्रिय हो कर उनके हृदय में स्थापित हो पाता है।

गुरु के ज्ञान और चेतना को समाहित करने के लिए
शिष्य की सम्भूत पात्रता अपेक्षित है।



शिष्य धर्म

एक धर्म गुरोराज्ञा एक कार्य गुरौर्मतिः।
एक आत्म गुरौचिन्त्यं एक दृष्टिः गुरोः पदम्।।

शिष्य का काम केवल यही होता है, कि वह ब्रह्माण्ड में सबसे बड़ कर केवल गुरु को ही मानता हो, तभी वह जीवन में पूर्णता और श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है। उसका कोई धर्म नहीं होता, उसका एक ही धर्म होता है, कि वह गुरु की आज्ञा का पालन करे, वह जो भी आज्ञा दे दे, उस पर विचार नहीं करे, उस पर चिन्तन नहीं करे, सोचे नहीं। गुरु करे, उस प्रकार से नहीं करे, अपितु गुरु कहे, उस प्रकार से करे, उसकी आज्ञा पालन में एक क्षण भी विलम्ब न हो, हिचकिकाहट न हो।

शिष्य के जीवन का एक ही मार्ग हो, कि जो गुरु की मति है, इच्छा है, भावना है, जिसे गुरु श्रेष्ठ मानते हैं, जिसे गुरु अच्छा मानते हैं, जो गुरु चाहते हैं, मुझे वही कार्य करना है और उस कार्य को पूर्णता देनी है।

शिष्य की आत्मा में एक ही चिन्तन होता है, कि वह प्रतिक्षण गुरु का ही विचार करे, उनका ही चिन्तन करे, उसके अलावा उसके जीवन में अन्य कोई विचार नहीं हो, अन्य कोई चिन्तन नहीं हो, अन्य कोई धारणा नहीं हो, अन्य कोई धर्म नहीं हो, अन्य कोई कार्य नहीं हो, जो एक ही चिन्तन में प्रतिक्षण डूबता रहता है और सेवा के लिए प्रतिक्षण तत्पर रहता है, जिसकी दृष्टि प्रतिक्षण गुरु के चरणों में लगी रहती है, जिसकी जीभ प्रतिक्षण गुरु मंत्र का जप करती है, जिसके हाथ प्रतिक्षण गुरु कार्य करते हैं, जिसकी बुद्धि प्रतिक्षण गुरु कार्य में रत रहती है, वही सही अर्थों में शिष्य है और यही शिष्य का धर्म है।

सही अर्थों में शिष्य जीवन का धर्म यही है, कि वह पूर्ण रूप से गुरुमय हो जाये, पूर्ण रूप से गुरु में लीन हो जाये और सेवा की प्रतिमूर्ति बन जाये, गुरु के अलावा न अन्य कोई चिन्तन हो, न ही अन्य कोई विचार।

... और जब ऐसा होता है, तभी उसे गुरु की प्रसन्नता प्राप्त होती है और जिस क्षण गुरु पूर्ण रूप से उस पर प्रसन्न हो जाते हैं, उसी क्षण वे अपने ज्ञान को, अपनी चेतना को, अपनी अद्वितीयता को, अपने देवत्व को, अपने गुरुत्व को क्षण मात्र में उसके अन्दर समाहित कर उसे श्रेष्ठतम व्यक्तित्व बना देते हैं, उज्ज्वलतम व्यक्तित्व बना देते हैं, दिव्यतम व्यक्तित्व बना देते हैं।

‘गुरोः आत्म निवेदनम्’

अपने जीवन को गुरुत्व सिद्धि के लिए
समर्पित करना गृह्यतम शिष्य धर्म है



शिष्य चिन्तन

सदा आज्ञा पालनं च यद्यपि दुष्करं भवेत्।
तनं मनः धनं श्रेयं स्वात्म चरणे विसर्जयेत्॥

शिष्य वह होता है, जो हमेशा गुरु की आज्ञा का पालन करता है, एक क्षण भी गुरु आज्ञा पालन में विलम्ब नहीं करता, वह आज्ञा चाहे कितनी भी कठोर हो, चाहे कितनी भी दुष्कर हो, चाहे हमारे विचारों के अनुरूप हो या न हो, परन्तु शिष्य का धर्म इतना ही है, कि वह पूर्णता के साथ उनकी आज्ञा का पालन करे और पूर्णता के साथ आज्ञा पालन करने के पश्चात् प्रसन्नता अनुभव करे। जो शिष्य ऐसा करता है, उस पर ही गुरु अपनी कृपा-दृष्टि डालते हुए भवसागर से मुक्त कर देते हैं, उसे पूर्णता दे देते हैं।

जो शिष्य तन, मन, धन और अपनी सम्पूर्ण श्रेयता से गुरु चरणों में रत रहता है, यहां तक कि अपनी आत्मा को, अपनी भावना को, अपने विचारों को भी गुरु चरणों में विसर्जित कर देता है, अपने पास कुछ भी नहीं रखता, वही सही अर्थों में शिष्य है, उसकी कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है और वह योगियों से भी उत्तम, साधुओं से भी श्रेष्ठ, देवताओं द्वारा भी बन्दीय और गुरु के हृदय में भी स्थापित होने वाला शिष्य बन जाता है। फिर उसे जीवन में किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं रहती, किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रहती।

वास्तव में गुरु सेवा और गुरु आज्ञा पालन ही वह एकमात्र माध्यम है, जिसके द्वारा गुरु को प्रसन्न किया जा सकता है, इसके अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं है और जब तक गुरु की प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती, तब तक किसी भी साधना में सफलता या सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। अतः शिष्य के लिए यह आवश्यक है, कि सबसे पहले वह गुरु सेवा करे, सेवा की प्रतिमूर्ति बन जाये।

अपने ‘स्व’ (अहं) के विसर्जन के बाद ही
गुरु आज्ञा पालन की क्षमता सम्भव होती है।



शिष्य की जागरूकता

निद्रोऽपि जाग्रतं चैव एकं चिन्त्यं गुरोः गृहम्।
देवता नापि गणयन्ति गुरौर्मात्रा गुरौर्गुरौ॥

शिष्य वह होता है, जो नींद में और जाग्रतावस्था में केवल एक ही चिन्तन रखता है, कि मेरा स्थान गुरु के चरणों में है, मेरा कार्य गुरु की आज्ञा का पालन करना है, मेरा धर्म गुरु की सेवा करना है, मेरा चिन्तन गुरु को सब कुछ समर्पित कर देना है, मेरा कर्तव्य गुरु को प्रसन्न करके रखना है और मेरी श्रेयता इस बात में है, कि मैं अपने आंसुओं से गुरु के चरणों को धोऊँ।

जो गुरु गृह को तीर्थ समझता है, मंदिर समझता है और उसे उसी प्रकार से स्वच्छ, निर्मल और दिव्य बनाये रखता है, जिस प्रकार से मंदिर को स्वच्छ और निर्मल बनाने की कोशिश की जाती है, वही सही अर्थों में शिष्य है।

शिष्य के जीवन में कोई अन्य देवता नहीं होते, न ब्रह्मा, न विष्णु, न महेश, न काली, न छिन्नमस्ता, न बगलामुखी, न जगदम्बा, न गणपति। फिर उसके सामने कोई साधना नहीं होती, कोई चिन्तन नहीं होता, कोई विचार नहीं होता, कोई धारणा नहीं होती, कोई ध्यान नहीं होता, उसके सामने केवल मात्र गुरु होता है, एकमात्र गुरु होता है, प्रतिक्षण गुरु होता है और प्रत्येक चिन्तन गुरु का ही चिन्तन होता है। ऐसे शिष्य की तो देवता भी सराहना करते हैं।

वास्तव में चित्त को पूर्ण रूप से गुरु में लीन कर देना, गुरु से एकाकार कर देना, गुरुमय बना देना ही शिष्य का एकमात्र चिन्तन होना चाहिए और ऐसा करके ही गुरुत्व को अपने हृदय में, अपने रोम-रोम में, अपने रक्त की बूंद-बूंद में स्थापित करने की क्रिया सम्पन्न हो सकती है। जो व्यक्ति गुरुत्व को अपने अन्दर स्थापित कर लेता है, वही मानव जीवन की श्रेष्ठता प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है।

गुरु आज्ञा पालन की एकाग्र निष्ठा देवगम्य नहीं है।



गुरु मंत्र

गुरोर्मंत्रं महत् मंत्रं जपति यः क्षणे क्षणे।
आज्ञा पालन तत्परं वै स भवति शिष्य श्रेयतः॥

संसार में लाखों-करोड़ों मंत्र हैं, उन मंत्रों में सर्वश्रेष्ठ मंत्र गुरु मंत्र कहा गया है और जब शिष्य गुरु मंत्र का 'अजपा जप' करता है, अजपा जप का तात्पर्य वह गणना नहीं करता, उठते, बैठते, खते, पीते, चलते, कार्य करते निरन्तर उसके होठ गुरु मंत्र जपते रहते हैं, दिन भर में कितने गुरु मंत्र जप हुए, इसका वह कोई लेखा-जोखा नहीं रखता, प्रतिक्षण गुरु मंत्र का जप ही वह करता रहता है, अन्य मंत्रों को वह तुच्छ समझता है, क्योंकि गुरु मंत्र के सामने अन्य मंत्र ठीक उसी प्रकार से होते हैं, जिस प्रकार से हिमालय के सामने कंकड़, जिस प्रकार समुद्र के सामने एक बूंद, इसलिए उस महामंत्र को जो प्रतिक्षण जपता रहता है, उसके लिए फिर कुछ भी असम्भव नहीं रहता, फिर उसे अन्य मंत्र जपने की आवश्यकता भी नहीं रहती, समस्त सिद्धियाँ उसका वरण करने के लिए स्वतः व्यग्र हो उठती हैं।

जो शिष्य इस कलियुग में अपने परिवार के बोझ से दबा हुआ, चारों तरफ से आलोचनाओं-प्रत्यालोचनाओं को झेलता हुआ, गुरु आज्ञा पालन में तत्पर रहता है और उसकी आज्ञा का पालन कर प्रसन्नता अनुभव करता है, वह सही अर्थों में शिष्य कहलाता है, वही अपने जीवन में श्रेय और प्रेय दोनों प्राप्त करता है, ऐसा शिष्य ही अपने जीवन में भोग और मोक्ष दोनों अनुभव कर पाता है, ऐसा ही शिष्य जीवन में सब कुछ प्राप्त कर पाता है, ऐसा ही शिष्य सही शिष्य कहला सकता है और ऐसा शिष्य ब्रह्मा, विष्णु, मरुद्गण के समकक्ष बन जाता है, जिसके हृदय में गुरु पूर्ण रूप से स्थापित होते हैं और गुरु स्थापना तब सम्भव होती है, जब पूर्ण रूप से शिष्य का प्रतिक्षण गुरु सेवा में व्यतीत होता है, वह गुरु के लिए सर्वस्व समर्पण के लिए तत्पर रहता है, ऐसा ही शिष्य धन्य-धन्य कहलाता है।

वास्तव में ही गुरु मंत्र कल्पवृक्ष के समान है, कामधेनु के समान है। गुरु मंत्र का निरन्तर जप करने वाला व्यक्ति देवताओं से भी अधिक श्रेष्ठ, उदात्त बन जाता है, उसके जीवन में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रहती, उसकी सभी इच्छाएं पूर्णता को प्राप्त होती हैं और वह मोक्ष और सिद्धाश्रम प्राप्त करने में समर्थ होता है।

**समस्त सिद्धि लाभ के लिए गुरु मंत्र ही श्रेयष्कर है,
अन्य किसी देवी-देवता का मंत्रानुष्ठान
शिष्य के लिए चिन्त्य और अनुपादेय है।**



गुरु कृपा

**न मोहः न च मात्सर्यं न क्रोधः न च लोभयेत्।
सर्वस्व चरणे स्वस्ति सप्राप्ति हि गुरोः कृपा।।**

शिष्य वह होता है, जिसे परिवार से किसी प्रकार का कोई मोह नहीं होता, शिष्य वह होता है, जिसके मन में किसी भी प्रकार की कोई इच्छा, आकांक्षा या भावना नहीं होती, शिष्य वह होता है, जिसे क्रोध आता ही नहीं, क्रोध से वह परे रहता है, शिष्य वह होता है, जिसके पास लोभ फटकता ही नहीं, उसे जो कुछ प्राप्त होता है, जो कुछ उसके पास होता है, वह गुरु के चरणों में समर्पित कर देता है और समर्पित करके प्रसन्नता अनुभव करता है।

जो बिना गुरु आज्ञा के ही अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है — तन को, मन को, धन को, सञ्चित द्रव्य को, भूमि को, वाहन को और बदले में गुरु के द्वारा पूर्णता प्राप्त कर लेता है, ऐसा शिष्य ही गुरु कृपा का आस्वादन करता है, ऐसा शिष्य ही पूर्णता प्राप्त कर सकता है, बहुत थोड़ा सा दे कर ही बहुत कुछ प्राप्त कर लेता है, प्रत्येक साधनाएं और सिद्धियां उसके गले में जयमाला डालने के लिए तत्पर रहती हैं और वह सही अर्थों में सिद्धाश्रम का वासी हो जाता है, इसमें किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है।

वास्तव में ही गुरु कृपा प्राप्त होना जीवन का सौभाग्योदय है, बिरले ही इसे प्राप्त करने में समर्थ हो पाते हैं और जो इसे प्राप्त कर लेता है, उसके पूर्वज हर्षित हो उठते हैं, उसे जन्म देने वाली कोख गौरवान्वित हो उठती है और वह देवताओं के लिए भी पूजनीय बन जाता है।

**गुरु कृपा प्राप्ति के लिए काम, क्रोध आदि दुष्कर प्रतिबन्धक हैं,
इनका परित्याग शिष्यता की दक्षता मानी जाती है।**



गुरुदेव

न श्रेष्ठत्वं गुरोर्मंत्रं न देवं गुरुवै समः।

न तीर्थं गुरु चरणाम्बुजं न तुलनां गुरुवै यमः॥

गुरु मंत्र से कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, यदि संसार में श्रेष्ठतम मंत्र कोई है, तो वह गुरु मंत्र है, क्योंकि उस एक मंत्र से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। गुरु से बढ़ कर कोई देवता नहीं है, क्योंकि सभी तीर्थ और देवता गुरु के दक्षिण चरण में समाहित होते हैं, किसी भी देवता से गुरु की तुलना नहीं की जा सकती। इसलिए गुरु को देवता नहीं, ब्रह्म कहा गया है, श्रेष्ठ कहा गया है, दिव्य कहा गया है, चैतन्य कहा गया है, पवित्रात्मा कहा गया है।

संसार में जितनी नदियां हैं — गंगा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु, कावेरी, और जितने भी समुद्र हैं, मानसरोवर आदि जितनी भी पवित्र झीलें हैं, वे सभी गुरु चरणों में समाहित हैं, इसलिए गुरु के चरणों का पान करना समस्त तीर्थों का अवगाहन करना है। जो गुरु चरणों से टपके हुए जल का अमृत संमिश्र कर पान कर लेता है, वह समस्त तीर्थों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त कर लेता है।

इसलिए गुरु की तुलना की ही नहीं जा सकती, सम्भव ही नहीं है, क्योंकि जितने भी देवता हैं, जितने भी मरुद्गण हैं, जितनी भी महादेवियां हैं, वे गुरु में समाहित हैं। एक ही मंत्र से, एक ही ध्यान से, एक ही धारणा से, एक ही सेवा से समस्त देवताओं की पूजा-अर्चना हो जाती है और गुरु चरणाम्बुज से सभी तीर्थों में अवगाहन करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है।

इसलिए गुरु संसार में सर्वश्रेष्ठ कहे गए हैं, अद्वितीय कहे गए हैं और उनकी तुलना अन्य किसी भी प्रकार से की ही नहीं जा सकती।

गुरु सर्वदेवमय हैं,

उनके चरणों का ध्यान ही सफलता सिद्धि का सुन्दरतम सोपान है।



शिष्यत्व

शीघ्राति अतिशीघ्रत्वं पूर्णं गुरौ समर्पयेत्।

न लोभो न क्वचित् चिन्त्यं स शिष्यः भव उच्यते॥

शीघ्र, अतिशीघ्र, जितना भी जल्दी हो सके, जो गुरु के प्रति समर्पित हो जाता है, तन से, मन से, धन से, सर्वस्व से, वह उतना ही जल्दी पूर्ण हो जाता है, उसकी कृपण्डलिनी जाग्रत हो जाती है, उसका सहस्रामृत टपकने लग जाता है, वह पूर्ण यौवनवान बन जाता है, सारे मंत्र उसके हृदय में स्थापित हो जाते हैं, उसके कंठ में सरस्वती विराजमान हो जाती है, उसके नेत्रों में सूर्य और चन्द्र निवास करने लग जाते हैं, उसके हृदय कमल पर विष्णु पूर्ण रूप से स्थापित हो जाते हैं, उसके भाल पर दिव्यता स्थापित हो जाती है, उसके ललाट पर आज्ञा चक्र दिप्-दिप् करता हुआ प्रकाशित हो जाता है।

— क्योंकि शिष्य का एक ही चिन्तन होता है, एक ही विचार होता है, एक ही धारणा होती है, कि मुझे अपने जीवन में पूर्णता के साथ शिष्य बनना है।

अन्य सब कुछ बनना आसान है, परन्तु शिष्य बनना अति कठिन है। बिना गुरु के कहे ही जो अपना सब कुछ गुरु को समर्पित कर देता है और यदि गुरु उसे स्वीकार कर लेता है, तो इससे बड़ा सौभाग्य और हो भी क्या सकता है?

जो निरन्तर अपने आपको गुरु कार्य में समर्पित कर देता है, उसकी तुलना की ही नहीं जा सकती। जो अपने तन, मन और धन को समर्पित कर गुरु के कार्य में चेष्टारत हो जाता है, उसकी समानता इस संसार में कहाँ सम्भव है?

शिष्य के मन में केवल यही भाव होता है, कि यह जीवन गुरु के लिए है, यह श्वास गुरु के लिए है और उसकी केवल एक ही आकांक्षा होती है, कि गुरु मुझे पूर्णता प्रदान कर दे, मुझे श्रेष्ठ बना दे, दिव्य बना दे, चेतना

आकांक्षा

युक्त बना दे, मेरे ऊपर गुरु की कृपा दृष्टि पड़ती रहे और मेरी उंगली धाम कर वह सिद्धाश्रम ले जा सके। मैं इसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार हूँ — ऐसा भाव मन में रखते हुए सब कुछ न्यौछावर कर दे और वापिस मन में किसी प्रकार का पछतावा न रखे, वही शिष्य है।

जो गुरु की आलोचना सुन कर भी चुप रहता है, वह महापातकी है, जो गुरु की निन्दा सुन कर मौन हो जाता है, वह सौरेव नरक में गिरता है, जो गुरु के विचारों के विपरीत कार्य करने वाले को दंड नहीं देता, उसके जैसा अधम तो इस पृथ्वी पर कोई है ही नहीं, जो गुरु चिन्तन से परे हट कर गुमराह करता है, ऐसे व्यक्ति का साथ जो नहीं छोड़ता, वह महापातकी होता है, जो गुरु के अलावा अन्य कोई विचार रखता है, उसे कठोरतम दंड देने की क्षमता नहीं रखता, वह शिष्य नहीं कहला सकता।

शिष्य के जीवन में एक ही गुरु होता है, एक ही ईश्वर होता है, एक ही भावना होती है, एक ही विचार होता है, एक ही चिन्तन होता है, कि मैं सुदर्शन चक्र की तरह गुरु के चारों ओर प्रदक्षिणा करता रहूँगा, एक क्षण भी गुरु को ओझल नहीं होने दूँगा, मैं गुरु को सर्वस्व मान कर समर्पित हो जाऊँगा... और जो समर्पित हो जाता है, वह सही अर्थों में शिष्य कहलाने के योग्य होता है और वही शिष्यता को चरितार्थ करता है।

वास्तव में प्रत्येक प्रकार से पूर्ण रूप से गुरुमय बन जाना, प्रतिक्षण गुरु को अपने समीप अनुभव करना और गुरु सेवा में पूर्ण रूप से रत हो जाना ही शिष्यता है, ऐसा करने वाले व्यक्ति ही सही अर्थों में शिष्य कहलाने के योग्य होते हैं।

जीवन में कहीं भी, किसी भी मोड़ पर
जीवन्त गुरु मिल जाने पर समर्पण में विलम्ब न करें,
यह आपके जीवन का सौभाग्य होगा।



न कांक्षं स्वर्ग मौक्षत्वं न गतिं गुरुवै पदम्।
सदा गुरौकृपाकांक्षी सेव्यं क्षणः प्रतिक्षणम्॥

जसके मन में अन्य किसी प्रकार की कोई आकांक्षा नहीं होती, कोई धारणा नहीं होती, कोई लालसा नहीं होती। केवल एक ही भावना होती है, कि मैं किस प्रकार गुरु को प्रसन्न कर सकूँ? मैं किस प्रकार से गुरु की कृपा प्राप्त कर सकूँ? मैं किस प्रकार से गुरु के चरणों में लीन हो सकूँ? ऐसे शिष्य के लिए स्वर्ग भी तुच्छ होता है।

ऐसे शिष्य की मोक्ष प्राप्ति की भी कोई इच्छा नहीं होती, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — ये चारों पुरुषार्थ तो गुरु के चरणों में ही निवास करते हैं। जो प्रतिक्षण गुरु कृपा का आकांक्षी होता है, जो प्रतिक्षण गुरु आज्ञा पालन करने के लिए तत्पर होता है, जो प्रतिक्षण छाया की तरह गुरु के पास रहता है, जो गुरु के चरणों का पान करता है, जो अपना सब कुछ समर्पित कर कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा और आकांक्षा नहीं रखता, जो क्षण-प्रतिक्षण गुरु की सेवा करने को ही श्रेयता, प्रेयता, महानता, दिव्यता और तेजस्विता समझता है और क्षण-प्रतिक्षण समर्पित रहता है, वही सही अर्थों में शिष्य कहला सकता है और वही अपने जीवन में सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

वास्तव में गुरु कृपा से बढ़ कर अन्य कौन सी दुर्लभता और अद्वितीयता हो सकती है? जिसने गुरु कृपा को प्राप्त कर लिया, उसके लिए फिर क्या अप्राप्य रह जाता है? इसीलिए शिष्य को चाहिए, कि वह छोटी-छोटी इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील न हो कर गुरु कृपा को ही प्राप्त करने के लिए ही प्रयत्नशील हो।

गुरुत्व प्राप्ति के बाद शिष्य के मन में स्वर्ग तो क्या,
परम पद की आकांक्षा भी निःशेष हो जाती है।

समर्पण

धनं धान्यं जरा देहं समर्पित्वं गुरौर्पदम्।
सदा स्मरेत् गुरोः कार्यं सदा सेव्यं गुरोर्हितम्॥

शिष्य वह होता है, जो धन्य, धान्य, भूमि और अपनी देह को भी तक्षण समर्पित कर देता है, किसी भी प्रकार की आज्ञा की प्रतीक्षा नहीं करता, सब कुछ समर्पित करके ही प्रसन्नता अनुभव करता है, गुरु के चरणों में अपने आपको समर्पित कर हर्षित होता है, वह सही अर्थों में शिष्य होता है।

जो नित्य गुरु चरणों को स्मरण करता रहता है, जो प्रतीक्षण गुरु की सेवा करता रहता है, गुरु के कार्य को ही अपना कार्य समझता है, गुरु के हित को ही अपना हित समझता है, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्तु भी गुरु चरणों में रख देता है और वापिस लेने की इच्छा नहीं रखता, वह सही अर्थों में शिष्य होता है।

शिष्य की तुलना अन्य किसी से भी नहीं की जा सकती, देवता भी शिष्य के सामने बौने होते हैं, समस्त तीर्थ भी शिष्य के सामने तुच्छ होते हैं, क्योंकि सही अर्थों में वह गुरु का ही एक अंश बन जाता है... और जब गुरु का अंश बन जाता है, तो कुछ भी बाकी नहीं रहता। जिस प्रकार नदी समुद्र में मिल कर समुद्र बन जाती है, जिस प्रकार एक पोखर का गांदा पानी गंगा में मिल कर पवित्र और दिव्य निर्मल गंगा जल बन जाता है, उसी प्रकार शिष्य गुरु में समाहित हो कर पूर्ण ब्रह्माण्डमय बन जाता है, ऐसे ही शिष्य की सराहना समस्त ब्रह्माण्ड करता है और देवता आकाश से उस पर पुष्प वृष्टि करते रहते हैं।

वास्तव में ही सब कुछ मिटा कर गुरु में लीन हो जाना, गुरु से एकाकार हो जाना ही शिष्य का एकमात्र धर्म, एकमात्र चिन्तन होता है और शिष्य को सदैव इसी के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

**समस्त भौतिक जीवन की सफलता को हेय मान कर
निरन्तर गुरु सेवा का ही चिन्तन शुद्ध और शास्त्र सम्मत समर्पण है।**



समस्त देवता

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रत्व वह्नि वै च मरुद्गणः।
पृथिव्यां सर्वं देवानां न तुल्यं गुरु यः सतः॥

हजारों-लाखों देवता हैं और उनमें भी ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सबसे श्रेष्ठ देवता हैं, इनके अलावा भी इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, मरुद्गण, यम, कुबेर, बगलामुखी, धूमावती, कमला, लक्ष्मी, सरस्वती आदि अन्य भी देवी-देवता हैं, ये सभी देवी-देवता भी गुरु के सामने तुच्छ हैं, न्यून हैं। इसलिए, कि शास्त्र स्वयं कहता है, यदि कोई ब्रह्म है, तो वह साक्षात् श्रीगुरु ही हैं —

**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥**

मैं गुरु को प्रणाम इसलिए करता हूँ, कि वे इन सभी देवताओं से भी उच्च पूर्ण ब्रह्म हैं। इसलिए जो भी व्यक्ति, जो शिष्य इन छोटे-छोटे देवताओं की साधना, उपासना, ध्यान, मनन करता है, वह ठीक है, परन्तु पत्तों को, डलियों को पानी पिलाने की अपेक्षा सीधे जड़ में ही पानी-दिया जाय, तो वृक्ष निश्चय ही हरा-भरा होता है, पूर्णता प्राप्त करता है, सघन छायादार वृक्ष बन जाता है और उसकी छाया तले हजारों-हजारों लोग विश्राम करते हैं।

गुरु ऐसा ही एक सघन वृक्ष होता है, इसलिए शिष्य को चाहिए, कि वह अन्य देवी-देवताओं की अपेक्षा गुरु चरणों को ही अपना तीर्थ माने, गुरु पूजा को ही पूजा माने, गुरु ध्यान को ही ध्यान माने, गुरु में समर्पण को ही अपना लक्ष्य माने और गुरु को ही सभी देवताओं में श्रेष्ठ माने, ऐसा चिन्तन रखने वाला व्यक्ति ही सही अर्थों में शिष्य कहला सकता है।

जो ऐसा शिष्य होता है, जिसके मन में ऐसी भावना होती है, जिसके मन में ऐसा चिन्तन और विचार होता है, जिसकी ऐसी धारणा होती है, जो इस

ध्यान को अपने मन में संजो कर रखता है, जिसकी जीभ पर गुरु का ही नाम होता है, वह सही अर्थों में शिष्य होता है, वह सही अर्थों में पूर्णता प्राप्त करता है, वह सही अर्थों में चैतन्यता को प्राप्त करता है, वह सही अर्थों में दिव्यता प्राप्त करता है।

यदि गुरु की ऐसी कृपा प्राप्त कर ली जाती है, तो फिर उसके जीवन में किसी प्रकार की कोई न्यूनता रह ही नहीं सकती, वह सभी लोकों में अपने आपमें अद्वितीय और श्रेष्ठ बन जाता है।

**इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि समस्त देव गण अपूर्ण हैं,
पूर्ण गुरुत्व की समता इनसे कैसे की जा सकती है?**



सेवा धर्मः परम गहनः

बिना आज्ञा समर्पित्वं देह यौवन सम्पदः।

छायावत् विचरन्ति वै स जानन्ति शिष्यया।।

शिष्य वह कहलाता है, जो गुरु की बिना आज्ञा के ही अपने आपको समर्पित कर दे, गुरु की बिना आज्ञा के ही अपना शरीर, अपना यौवन, अपनी सम्पदा, अपना वैभव, अपना चिन्तन, अपने विचार, अपनी धारणा, सब कुछ समर्पित कर दे, वह शिष्य कहलाता है।

शिष्य का पहला और अन्तिम कर्तव्य यह होता है, कि वह छाया की तरह गुरु के साथ विचरण कर सकता है। जिस प्रकार से शरीर से छाया अलग नहीं हो सकती, जिस प्रकार चमड़ी से मांस अलग नहीं हो सकता, उसी प्रकार गुरु से भी शिष्य अलग विचरण नहीं कर सकता, अलग नहीं रह सकता, एक क्षण भी सांस नहीं ले सकता, अलग होने की कल्पना भी नहीं कर सकता। वह प्रतिक्षण गुरु के हितों का सम्पादन करता ही रहता है, वह प्रतिक्षण उनकी ओर चकोर की तरह ताकता रहता है, वह हनुमान की तरह बराबर सेवक बना रहता है, वह छाया बन कर जीवित रहता है, आज्ञा पालन करने में तत्पर रहता है और इसी में अपना सौभाग्य समझता है।

जो ऐसा शिष्य होता है, जो ऐसी धारणा रखता है, वह अपने आपमें श्रेष्ठ, दिव्य और अद्वितीय होता है और ऐसे व्यक्ति को ही सही अर्थों में शिष्य कहा जा सकता है।

शिष्यता की सम्भावना को प्राप्त करने के लिए निरन्तर गुरु के चरणों में समर्पित हो कर सेवा करना ही सौभाग्यप्रद है।



सिद्धाश्रम प्राप्ति

त्वरितं त्वरितं कार्यं त्वरितं भव समर्पितं।
स प्राप्यं धनं धान्यं सिद्धाश्रमः न संशयः॥

जो गुरु का कार्य तुरन्त करता है, गुरु के मुंह से आज्ञा निकले और

वह कार्य पूर्ण करने के लिए तैयार हो जाय, गुरु के होठों से शब्द का निकलना हुआ और वह उसके लिए तत्पर हुआ, कार्य करने के लिए सन्नद्ध हुआ, कार्य करने के लिए आगे बढ़ा और कार्य सम्पन्न किया। ऐसा व्यक्ति ही शिष्य कहलाता है।

जो बिना हिचकिचाहट के, बिना सोचे, बिना समझे, बिना विचार किये, बिना बुद्धि को आगे किये अपने आपको तन, मन और धन से पूर्ण समर्पित कर देता है, वह सही अर्थों में समर्पित शिष्य कहलाता है, उसका समर्पण तो अपने आपमें हीरे-मोतियों से तोलने लायक होता है।

ऐसा शिष्य ही अपने जीवन में सुख, धन, धान्य, यश, मान, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य सब कुछ प्राप्त करता हुआ गुरुदेव के साथ निश्चय ही सिद्धाश्रम प्राप्ति करता है, इसमें किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है।

ऐसा ही शिष्य अपने आपमें सौभाग्यशाली होता है, ऐसे शिष्य की ही सर्वत्र पूजा होती है, ऐसा ही शिष्य आगे चल कर गुरु पद का अधिकारी बनता है।

पूर्ण समर्पण और श्रद्धा के बाद गुरु कृपा की प्राप्ति स्वतः सुलभ होती है तथा सिद्धाश्रम गमन उसके लिए हस्तामलकवत् दृष्टिगोचर होता है।



गुरुदेव सामर्थ्य

गुरुदेव महत् श्रेष्ठं सर्वं सिद्धिश्च योगिनः।
आवागमनं क्षणेत् युक्तं नारायणं नमोऽस्तुते॥

हे गुरुदेव ! आपका वर्णन कैसे किया जा सकता है ? क्या आज तक किसी ने ब्रह्माण्ड का पूर्णता से वर्णन किया है ? क्या आज तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश का वर्णन किया जा सका है ? क्या आज तक समस्त ब्रह्माण्ड को एक साथ देखा जा सका है ? क्या आज तक कृष्ण के विराट स्वरूप को इन चर्म चक्षुओं से परखा जा सका है ?

जब वह नहीं हो सका है, तो गुरुदेव ! आपके सौन्दर्य का, आपकी श्रेष्ठता का, आपकी दिव्यता का, आपकी सिद्धियों का, आपकी पूर्णता का, आपकी अद्वितीयता का भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

— क्योंकि आप महान हैं, क्योंकि आप अद्वितीय हैं, क्योंकि आपके समान अन्य कोई है ही नहीं। एक से पचास हजार तक गिनें, तब भी आप ही नजर आयेंगे। तब हम और किसकी शरण में जायें, क्योंकि आप समस्त सिद्धियों के आगार हैं, समस्त सिद्धियां अपनी जयमाला आपके गले में डाल कर अपने आपको धन्य अनुभव कर रही हैं। क्षण मात्र में ही आप किसी भी व्यक्ति को कोई भी सिद्धि प्रदान कर सकते हैं, किसी को भी निहाल कर सकते हैं, किसी को भी पूर्णता दे सकते हैं, क्योंकि आप गुरुदेव होते हुए भी योगी हैं, योगी होते हुए भी गुरुदेव हैं, आप गुरुदेव और संन्यास दोनों का संगम हैं। ऐसा संगम अन्यत्र दुर्लभ है।

आप जिस प्रकार से भी चाहें, जैसा चाहें, रूप परिवर्तित कर सकते हैं। आप जितने भी चाहें, रूप धारण कर सकते हैं, अपने आपको मनचाहे रूपों में विभक्त कर सकते हैं। आप अपनी इच्छानुसार लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, दिव्यता, तेजस्विता, घटा-बढ़ा सकते हैं। आप संन्यासी बन सकते हैं, योगी बन सकते हैं, गुरुदेव बन सकते हैं, देवताओं से भी उच्चता प्राप्त किये

हुए व्यक्तित्व बन सकते हैं और अत्यन्त सामान्य रूप में विचरण करते हुए भी बन सकते हैं।

शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं है, कि उनके द्वारा आपका वर्णन किया जा सके। 'गिरा नैन, नैन बिन बानी' आखें बहुत कुछ देख सकती हैं, मगर उनके पास जीभ नहीं है, जो उसका वर्णन कर सकें और जीभ बहुत कुछ बोल सकती है, बता सकती है, मगर उसके पास आंखें नहीं हैं, जो वह निहार सके। ठीक वैसी ही स्थिति हमारे साथ बन गई है। शब्दों के माध्यम से आपको बांधने में असफल रहते हैं। शब्दों के माध्यम से आपको बांधा भी नहीं जा सकता, सम्भव ही नहीं है। जिन्होंने भी इसके लिए प्रयत्न किया, उन्होंने थक-हार कर इतना ही कहा, कि शब्दों में क्षमता नहीं है, शब्द अपने आपमें असहाय हैं, कि आपका वर्णन कर सकें, आपका विवरण दे सकें, आपकी पूरी चेतना को पत्रों पर उतार सकें।

समस्त लोकों में आपका आवागमन सहज-सुलभ है। एक क्षण आप यहां हैं, दूसरे ही क्षण आप शुक्र ग्रह पर हैं, तीसरे ही क्षण आप इन्द्र लोक में हैं, चौथे क्षण आप सिद्धाश्रम में हैं, पांचवे क्षण अन्य किसी स्थान पर, क्योंकि आप आवागमन से मुक्त हैं। आप परकाया प्रवेश और सहस्र काया युक्त हैं। वायु से भी हजार-हजार गुणा अधिक गति के साथ, तेजी के साथ आप एक लोक से दूसरे लोक में आ-जा सकते हैं।

हम अनुभव करते हैं, कि आप यहां हैं, ठीक उसी क्षण आप अन्य किसी लोक में भी हो सकते हैं। जिस समय यहां प्रवचन कर रहे होते हैं, ठीक उसी समय सिद्धाश्रम में भी योगियों के समक्ष शायद प्रवचन कर रहे होते हैं या उन्हें साधना सूत्र समझा रहे होते हैं। जब आप हमारे साथ हास्य-विनोद कर रहे होते हैं, उस समय आप शायद शुक्र ग्रह पर भी हास्य-विनोद कर रहे होते हैं, क्योंकि आप गम्भीर भी हैं, हास्य युक्त भी हैं, विनोद युक्त भी हैं। जब आप खिलखिला कर हंसते हैं, तो सारा ब्रह्माण्ड प्रसन्न हो जाता है। जब आप हमारी न्यूनताओं को देख कर उदास होते हैं, तो सारी प्रकृति उदास हो कर रोने लग जाती है, मुरझा जाती है।

यह जो कुछ मैं कह रहा हूँ, अन्य योगियों से सुन कर, किताबों में पढ़

कर, ज्ञानियों के मुख से सुन कर, अनुभव कर कह रहा हूँ। इसमें एक भी शब्द मिथ्या नहीं है और इतना सब कुछ कहने के बाद भी मैं अपनी बातों को, अपनी भावनाओं को पूरी तरह से व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। आप सही अर्थों में नारायण हैं, आप सही अर्थों में पूर्ण हैं, पूर्णता के आगार हैं, आप सही अर्थों में अद्वितीय हैं, आप सही अर्थों में श्रेष्ठ हैं, आप सही अर्थों में तेजस्विता युक्त हैं, आप सही अर्थों में चेतना युक्त हैं, आप सही अर्थों में देवताओं से भी उच्चकोटि के व्यक्तित्व हैं, आप सही अर्थों में मानव देह धारी होने के बावजूद विराट रूप हैं।

ऐसे विराट रूप को मैं भक्ति भाव से प्रणाम करता हूँ और प्रतीक्षा करता हूँ उस क्षण की, जब आप मेरे सिर पर हाथ फेरेंगे, जब आप स्नेह के साथ शिष्य कह कर पुकारेंगे, जब आपके होठों पर मेरा नाम उच्चरित होगा, जब आप मेरा हाथ पकड़ कर हिमालय की ओर ले जा सकेंगे, जब आप सिद्धाश्रम के द्वार पर ले जा कर खड़ा कर सकेंगे, जब मैं सही अर्थों में आपका शिष्य कहला सकूंगा। वह क्षण शाश्वत बन जायेगा, अद्वितीय बन जायेगा। ऐसा लगेगा, कि जैसे मेरा नाम आकाश में इन्द्रधनुष की तरह प्रकृति ने लिख दिया हो। मैं उसी क्षण की प्रतीक्षा में हूँ।

मैं पल-पल मृत्यु की ओर बढ़ रहा हूँ, अतः मेरी आपसे प्रार्थना है, कि आप जो कुछ करें, तुरन्त करें, जिससे कि मैं जीवन में पूर्णता प्राप्त कर सकूँ, श्रेष्ठता प्राप्त कर सकूँ, दिव्यता प्राप्त कर सकूँ और उससे भी ज्यादा आपका शिष्य कहला सकूँ।

समस्त कर्म बन्धनों से मुक्ति दिलाने
के लिए एकमात्र गुरु ही सक्षम हैं,
अतः वही शिष्य के लिए ध्येय, ज्ञेय और श्रेय हैं।



साधक सामर्थ्यता

गुरु कृपा त्व करुणा साधकः साधिका यथा।
सिद्धाश्रमे त्व गमनं च याति नान्यत्र संशयः॥

गुरुदेव ! यह बात निश्चित है, कि हम सभी साधक-साधिकाएं, हम पुरुष-स्त्रियां साधनाएं नहीं कर सकते, मंत्र जप नहीं कर सकते, केवल आत्म प्रवचना कर सकते हैं और मन में प्रसन्न हो सकते हैं, कि हम माला फेर रहे हैं, मन में खुश हो सकते हैं, कि मंत्र जप कर रहे हैं, मन में आनन्दित हो सकते हैं, कि हम साधक बन रहे हैं; मन में अनुभव कर रहे हैं, कि हम योगी बन रहे हैं; मगर यह आत्म प्रवचना है, यह असत्य है, यह छल है, अपने आपको धोखा देना है।

सत्य तो यह है, कि सैकड़ों वर्षों तक साधनाएं, तपस्या करने के बाद भी सफलता प्राप्त होना असम्भव है। यदि एक-दो लोगों को सफलता मिल भी गई, तो हजारों-हजारों साधनाएं हैं, कितनी साधनाएं इस नश्वर देह के माध्यम से की जा सकेंगी ? जब साधनाएं सम्पन्न नहीं हो पायेंगी या दो-चार साधनाएं प्राप्त हो भी जायेंगी, तो क्या इससे जीवन में पूर्णता आ सकेगी ? क्या इससे जीवन में सफलता आ सकेगी ? क्या इससे जीवन में दिव्यता आ सकेगी ?

— सम्भव नहीं है।

... और जो लोग कुछ मंत्र जप कर अपने आपको श्रेष्ठ मान रहे हैं, उन्हें तो सही अर्थों में गुरु मंत्र भी स्मरण करना, उच्चारण करना नहीं आता। हम लोग सही ढंग से आपका नाम भी उच्चारण नहीं कर सकते। जब हृदय उल्लसित हो, कंठ गद्गद हो, होठ फड़फड़ा रहे हों और आपका नाम सजल नेत्रों से उच्चरित हो, तभी सही अर्थों में आपका नाम उच्चरित हो सकेगा। क्या ऐसा भाग्य हमारा नहीं है ?

इसके लिये तो बस दो ही उपाय हैं — गुरु कृपा हो और उनकी

26 गुरु और शिष्य

करुणा व्याप्त हो। यह तो आपके द्वारा ही सम्भव है। आप कैसे प्रसन्न हों, यह हमें ज्ञात नहीं है। आपकी पूजा कैसे हो, इसका भी हमें अनुभव नहीं है। किन भौतिक पदार्थों के माध्यम से आपकी पूजा करें, इसका हमें कोई ज्ञान, कोई चेतना नहीं है। इस शरीर को हम आपके चरणों में कैसे समर्पित करें, इसका भी हमें भान नहीं है। हमारा जो कुछ भी है, तन, मन, धन पूर्णता के साथ आपके चरणों में हम रख रहे हैं। आज के बाद हमारा कुछ भी नहीं है, न कोई इच्छा है, न कोई आकांक्षा है, न कोई चिन्तन है, न कोई विचार है, न मां है, न बाप है, न भाई है, न बहिन है, न पुत्र है, न पुत्री है, न पति है, न पत्नी है। ये सब तो स्वार्थ के पुतले हैं, जो एक-दूसरे के प्रति बराबर धोखा देते हुए आकर्षित होते रहते हैं।

सत्य तो केवल यह है, कि आपकी कृपा हमें प्राप्त हो, सत्य तो यह है, कि आपकी करुणा हमें प्राप्त हो, सत्य तो यह है, कि आपकी सामीप्यता हम अनुभव कर सकें, सत्य तो यह है, कि आपकी खिलखिलाहट हम सुन सकें और सत्य यह है, कि आपकी कृपा दृष्टि हम प्राप्त कर सकें।

हम अपने आपको साधक कहते हैं। इससे भी आगे बढ़ कर हम सही अर्थों में शिष्य बनना चाहते हैं। अभी तो हम शिष्यता से लाखों-करोड़ों मील दूर हैं। शिष्यता तो उसे कहते हैं, जहां सब कुछ न्यौछावर कर दिया जाता है, जहां अपना कुछ रहता ही नहीं। अभी तो हमारे पास मकान है, धन है, कागज के नोट हैं, कंकड़-पत्थर हैं। ये सब कुछ बेकार हैं, व्यर्थ हैं, इन सबको हम परे धकेल कर आपके चरणों में पहुंच जाना चाहते हैं। इनकी हमें आवश्यकता नहीं है, यदि आपकी कृपा हो गई, तो हजार-हजार बार ये चीजें हमें प्राप्त हो जायेंगी। परन्तु ये सब तो नश्वर हैं, यदि कुछ शाश्वत है, तो वह आपकी कृपा ही है, आपकी करुणा ही है।

और जीवन की इच्छा है, कि हम जीवन में जल्दी से जल्दी सिद्धाश्रम गमन कर सकें। यदि सम्भव हो, तो साधकों के साथ, साधिकाओं के साथ, पति के साथ, पत्नी के साथ... और यदि नहीं, तो अकेले ही सही। जहां आप साथ हैं, वहां हमें किसी और चीज की आवश्यकता है भी नहीं। हम तो केवल एक ही चीज, एक ही तथ्य समझते हैं, कि आपकी आज्ञा हमें शिरोधार्य

गुरु और शिष्य 27

हो, आपकी पूर्णता हम प्राप्त कर सकें, आपकी तेजस्विता से हम ओत-प्रोत हो सकें, आपकी दिव्यता से आह्लादित हो सकें और आपकी करुणा से भीग सकें, निहाल हो सकें।

अन्य कोई दूसरी गति है ही नहीं, अन्य कोई योगी, यति, संन्यासी नहीं है, जो हमें सिद्धाश्रम तक ले जा सके, अन्य किसी के वश की बात नहीं है, जो हमें अपना शिष्य बना सके। हम आपके शिष्य हैं, इस बात का हमें गर्व है... और जब कोई यह सुनता है, तो आश्चर्य से हमारी ओर ताकता रह जाता है, उस समय हमारा सीना और भी चौड़ा हो जाता है, क्योंकि यह आपकी ही कृपा है।

अब इसमें कोई सन्देह नहीं है, संशय नहीं है, कि आपकी कृपा के बिना कुछ भी नहीं सकता, आपकी करुणा के बिना कुछ नहीं हो सकता, आपकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता... और यह सब कुछ तब हो सकता है, जब हम त्याग वृत्ति अपनायें। हमसे वह त्याग वृत्ति हो नहीं पा रही है, एक क्षण में सब कुछ छोड़-छाड़ कर आपके चरणों में समर्पित हो जायें, ऐसी शक्ति दें, ऐसी क्षमता दें, ऐसी ताकत दें, जिससे कि हम सही अर्थों में पूर्णता प्राप्त कर सकें, सही अर्थों में आपके चरणों में न्यौछावर हो सकें, सही अर्थों में अपने आपको मिटा सकें, सही अर्थों में पूर्णता प्राप्त कर सकें, सही अर्थों में आपकी कृपा का प्रसाद प्राप्त कर सकें।

गुरु कृपा के बिना

किसी भी साधना या सिद्धि के द्वारा
सिद्धाश्रम गमन सम्भव ही नहीं है।



पूर्णता

कृपा कटाक्ष प्राप्ताय कृपासिन्धु वगाहयेत्।

पूर्णत्वं भवतं शिष्यः नास्ति संशय संशयः।।

जो अपने प्रयत्नों से गुरु की कृपा प्राप्त कर लेता है, गुरु को प्रसन्न कर लेता है, अपना सर्वस्व दे कर भी गुरु की मुस्कुराहट को अपने हृदय में उतार लेता है, अपना सब कुछ प्रदान करके भी मन में हर्षित होता है और गुरु रूपी समुद्र में स्नान कर अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव करता है, उसकी दृष्टि प्रतिक्षण गुरु के चरणों में रहती है, उसका मन प्रतिक्षण गुरु आज्ञा में रमता है, उसके कान प्रतिक्षण गुरु के कथन सुनने के लिए आतुर रहते हैं, उसकी आंखें प्रतिक्षण गुरु को चकोर की तरह ताकती रहती हैं, वह प्रतिक्षण गुरु में लीन रहता है।

शिष्य की यही पहिचान है, शिष्य का यही धर्म है, शिष्य का यही लक्षण है और इस प्रकार से वह पूर्णता प्राप्त कर सकता है, वरना इस जीवन में वह कितनी भी साधनाएं करे, कितने भी मंत्र जप करे, कितने भी देवताओं की आराधना करे, परन्तु गुरु कृपा के बिना उसे सफलता नहीं प्राप्त हो सकती।

शिष्य का केवल एक ही कार्य, एक ही सेवा, एक ही भावना केवल एक ही चिन्तन, एक ही धारणा होती है, कि वह गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करे ? वह क्या करे, जिससे कि गुरु के होठों पर मुस्कुराहट उभरे ?

और जो गुरु को प्रसन्न कर लेता है, वह सभी दृष्टियों से पूर्णता प्राप्त कर पूर्णत्व अनुभव करता है। वास्तव में 'पूर्णता' शब्द की रचना ऐसे ही शिष्यों के लिए ही हुई है, जो सब कुछ समर्पित करके भी, सब कुछ मिटा कर भी गुरु की कृपा कटाक्ष प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। ऐसे शिष्य के लिए फिर कुछ भी असम्भव नहीं रह जाता, उसे समस्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं और वह सिद्धाश्रम जाने में समर्थ होता है।

पूर्णता प्राप्ति ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।



जीवन को निष्कंटक बनाने का रहस्य ये छह मांत्रोक्त दीक्षाएं

पूज्यपाद गुरुदेव के वरद हस्त तले

१. **गुरु दीक्षा** : प्रारम्भिक एवं आवश्यक दीक्षा, प्रत्येक साधना की नींव।
२. **ज्ञान दीक्षा** : जन्म-जन्मांतरे के कर्मों को काटने की दीक्षा।
उच्च कोटि की दीक्षाओं के लिए प्रथम चरण।
३. **धन्यन्तरी दीक्षा** : जिससे शरीर रोग रहित और बलवान बन सके। जीवन व साधनाओं में सफलता के लिए आवश्यक।
४. **महालक्ष्मी दीक्षा** : जीवन में आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही साध आवश्यक है भौतिक समृद्धता, इसी का उपाय है यह दीक्षा
५. **शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी जागरण** : लम्बी साधनाओं की अपेक्षा कुण्डलिनी जागरण की सहज पद्धति। समर्थ व सक्षम पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा।
६. **भुवनेश्वरी दीक्षा** : केवल मात्र एक साधना, एक दीक्षा से भोग व मोक्ष दोनों ही प्राप्त कर लेने का अवसर।

हर गृहस्थ के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हैं ये दीक्षाएं

नोट - दीक्षा के समय व दिन टेलीफोन पर

अथवा पत्र द्वारा पूर्व निर्धारित कर लें

सम्पर्क

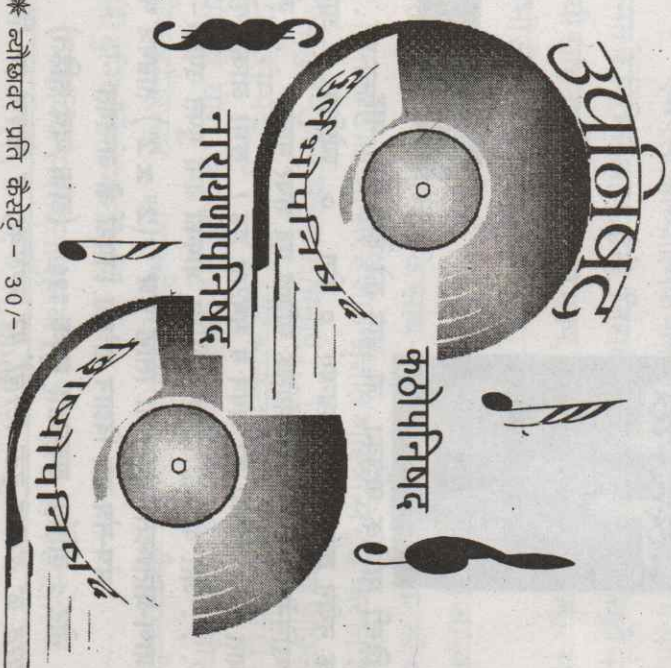
गुरुधाम,
३०६- कोहटा एन्क्लेव,
पीतम्पुरा, नई दिल्ली-३४,
फोन: ०११-७१८२२४८,

मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान,
हार्इकोर्ट कॉलोनी,
जोधपुर (राज.) ३४२००१,
फोन: ०२९१-४३२०१०

प्रेम नदी का मैं हूँ उस चाँदिया

आनंद . . . जल का एक विशाल संग्रह, एक महोदधि, जो निर्मित हुआ है प्रेम की अनेक नदियों के मिलने से, उस 'चाँद' लीजिए प्रेम का, फिर तो

उस महोदधि तक की यात्रा स्वतः सम्पन्न हो ही जाएगी, एक बार . . .



* न्यूजवाचक प्रति कैसेट - ३०/-

:: सम्पर्क ::

मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हार्इकोर्ट, कॉलोनी, जोधपुर (राज.)
फोन : ०२९१-४३२२०९ ०२९१-४३२०१०